पञ्चमहायज्ञविधिः

अथ पञ्चमहायज्ञविधिः

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मितः

वेदमन्त्राणां संस्कृतप्राकृतभाषार्थसहितः।

सन्ध्योपासनाग्निहोत्रपितृसेवाबलिवैश्वदेवातिथिपूजा-
नित्यकर्मानुष्ठानाय संशोध्य यन्त्रयितः॥

छन्दः शिखरिणी

दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः
सरस्वत्यस्याग्रे निवसति मुदा सत्यनिलया।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रकटसुगुणा वेदशरणा-
स्त्यनेनायं ग्रन्थो रचित इति बोद्धव्यमनघाः॥

ग्रन्थ परिचय

इस पुस्तक में प्रत्येक मनुष्य के लिए नित्य-प्रति करने योग्य आवश्यक कर्मों की विधि बताई गई है। ये नित्यकर्म हैं—

१. **ब्रह्मयज्ञ** अर्थात् सन्ध्या
२. **देवयज्ञ** अर्थात् यज्ञ या हवन
३. **पितृयज्ञ**
४. **भूतयज्ञ** या **बलिवैश्वदेव यज्ञ**
५. **नृयज्ञ** या **अतिथि यज्ञ**

इन्हीं का दूसरा नाम '**पञ्चमहायज्ञ**' है।

इस ग्रन्थ में मूल संस्कृत मन्त्रों के साथ उनके संस्कृत भाषा में भाष्य तथा हिन्दी में भावार्थ दिये गये हैं। **महर्षि ने विक्रमी संवत् १९३४, भाद्रपद मास की पूर्णिमा के दिन** इसका लेखन पूर्ण किया। यह संस्करण महर्षि द्वारा अन्तिम बार संशोधित है। अतः यही सर्वाधिक प्रामाणिक है। इससे पूर्व वाले संस्करण नहीं। (सम्पादक)

अथ सन्ध्योपासनादिपञ्चमहायज्ञविधिः

यह पुसतक नित्यकर्मविधि का है। इसमें पञ्चमहायज्ञ का विधान है, जिनके ये नाम हैं कि—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ। उनके मन्त्र, मन्त्रों के अर्थ और जो-जो करने का विधान लिखा है, सो-सो यथावत् करना चाहिये। एकान्त देश में अपने आत्मा, मन और शरीर को शुद्ध और शान्त करके, उस-उस कर्म में चित्त लगा के, तत्पर होना चाहिये। इन नित्यकर्मों के फल ये हैं कि—ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से, शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्य्यों की सिद्धि होना। उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं। इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है।

अथ तेषां प्रकारः। तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याविधानं प्रोच्यते। तत्र सन्ध्याशब्दार्थः—'सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या'। तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभयोस्सन्ध्ययोः सर्वैर्मनुष्यैरवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्य्याः।

आदौ शरीरशुद्धिः कर्त्तव्या—

सा बाह्या जलादिना, आभ्यन्तरा रागद्वेषासत्यादित्यागेन।

अत्र प्रमाणम्—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनःसत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

इत्याह मनुः—अ० ५। श्लो० १०९॥

शरीरशुद्धेस्सकाशादात्मान्तःकरणशुद्धिरवश्यं सर्वैस्सम्पादनीया। तस्यास्सर्वोत्कृष्टत्वात् परब्रह्मप्राप्त्येकसाधनत्वाच्च।

ततो मार्जनं कुर्यात्—

नैवेश्वरध्यानादावालस्यं भवेदेतदर्थं शिरोनेत्राद्युपरि जलप्रक्षेपणं कर्त्तव्यम्। नो चेन्न।

भाषार्थ—अब सन्ध्योपासनादि पाँच महायज्ञों की विधि लिखी जाती है। और उसमें के मन्त्रों का अर्थ भी लिखा जाता है। पहिले '**सन्ध्या**'

शब्द का अर्थ यह है कि—(सन्ध्यायन्ति०) भली भाँति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिसमें, वह '**सन्ध्या**'। सो रात और दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।

पहिले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि और राग-द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये। क्योंकि मनुजी ने अध्याय ५ के १०६ श्लोक (अद्भिर्गात्राणि इत्यादि) में यह लिखा है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। परन्तु शरीरशुद्धि की अपेक्षा अन्त:करण की शुद्धि अवश्य करनी चाहिये। क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एक साधन है।

तब कुशा वा हाथ से **मार्जन** करे। अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करने के समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे, इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जल प्रक्षेप करे। यदि आलस्य न हो तो न करना।

पुनर्न्यूनान्न्यूनांस्त्रीन् प्राणायामान् कुर्य्यात्—

आभ्यन्तरस्थं वायुं नासिकापुटाभ्यां बलेन बहिर्निस्सार्य्य यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भयेत्। पुनः शनैश्शनैर्गृहीत्वा किञ्चित् तमवरुध्य पुनस्तथैव बहिर्न्निस्सारयेदवरोधयेच्च। एवं त्रिवारं न्यूनातिन्यूनं कुर्य्यात्। अनेनात्ममनसोः स्थितिं सम्पादयेत्।

ततो गायत्रीमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा रक्षाञ्च कुर्य्यात्—

इतस्ततः केशा न पतेयुरेतदर्थं शिखाबन्धनम्। प्रार्थितस्सन्नीश्वरस्सत्कर्मसु सर्वत्र सर्वदा रक्षेन्नः, एतदर्थं रक्षाकरणम्।

भाषार्थ—फिर कम से कम तीन प्राणायाम करे। अर्थात् भीतर के वायु को बल से निकाल कर यथाशक्ति बाहर ही रोक दे। फिर शनैः शनैः ग्रहण करके कुछ चिर भीतर ही रोक के बाहर निकाल दे, और वहाँ भी कुछ रोके। इस प्रकार कम से कम तीन वार करे। इससे आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करे।

इसके अनन्तर गायत्री से शिखा को बाँध के रक्षा करे। इसका प्रयोजन यह है कि इधर-उधर केश न गिरें, सो यदि केशादि पतन न हो तो न करे और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करे।

अथाचमनमन्त्रः—

ओं शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।
शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः॥ १॥ —यजुः० ३६।१२

भाष्यम्—'आप्लृ व्याप्तौ' अस्माद्धातोरप्शब्दः सिध्यति। अप्शब्दो नियतस्त्रीलिङ्गो बहुवचनान्तश्च। 'दिवु क्रीडाद्यर्थः'। (शन्नो दे०) देव्य आपः सर्वप्रकाशकस्सर्वानन्दप्रदस्सर्वव्यापक ईश्वरः, (अभिष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये, (पीतये) पूर्णानन्दभोगेन तृप्तये, (नः) अस्मभ्यं, (शम्) कल्याणं, (भवन्तु) अर्थात् भावयतु प्रयच्छतु। ता आपो देव्यः स एवेश्वरः (नः) अस्मभ्यं, (शंयोः) शम् (अभि स्रवन्तु) अर्थात् सुखस्याभितः सर्वतो वृष्टिं करोतु।

अप्शब्देनेश्वरस्य ग्रहणम्। अत्र **प्रमाणम्—**

यत्र॑ लो॒कांश्च॒ कोशां॒श्चापो॒ ब्रह्म॒ जना॑ वि॒दुः।
अस॑च्च॒ यत्र॒ सच्चा॒न्तः स्क॒म्भं तं ब्रू॑हि कत॒मः स्वि॑दे॒व सः॥

अथ० कां० १०। सू० ७। मं० १०॥

अनेन वेदमन्त्रप्रमाणेनाप्शब्देन परमात्मनोऽत्र ग्रहणं क्रियते॥

एवमनेन मन्त्रेणेश्वरं प्रार्थयित्वा त्रिराचामेत्। जलाभावश्चेन्नैव कुर्यात्। आचमनमप्यालस्यकण्ठस्थकफस्य निवारणार्थम्।

भाषार्थ—अब आचमन करने का मन्त्र लिखते हैं—(ओं शन्नोदेवी इत्यादि)। इसका अर्थ यह है कि—'आप्लृ व्याप्तौ' इस धातु से अप् शब्द सिद्ध होता है। वह सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त है। 'दिवु' धातु अर्थात् जिसके क्रीड़ा आदि अर्थ हैं, उससे देवी शब्द सिद्ध होता है। (देव्यः आपः) सबका प्रकाशक, सबको आनन्द देने वाला और सर्वव्यापक ईश्वर, (अभिष्टये) मनोवाञ्छित आनन्द के लिये, और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये, (नः) हमको (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) हो, अर्थात् हमारा कल्याण करे। वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वथा वृष्टि करे।

यहाँ 'अप्' शब्द से ईश्वर के ग्रहण करने में प्रमाण—(यत्र लोकांश्च०) जिसमें सब लोक-लोकान्तर, कोश अर्थात् सब जगत् का कारणरूप खजाना, जिसमें असत् अदृश्यरूप आकाशादि और सत् स्थूल प्रकृत्यादि सब पदार्थ स्थित हैं, उसी का नाम अप् है। और वह नाम ब्रह्म का है, तथा उसी को स्कम्भ कहते हैं। वह कौनसा देव और कहाँ है? इसका उत्तर है कि

जो (अन्तः) सबके भीतर व्यापक होके परिपूर्ण हो रहा है, उसी को तुम उपास्य, पूज्य और इष्टदेव जानो। इस वेदमन्त्र के प्रमाण से अप् नाम ब्रह्म का है।

इस प्रकार इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आचमन करे, यदि जल न हो तो न करे। आचमन से गले के कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है।

अथेन्द्रियस्पर्शः—

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे॥

भाष्यम्—एभिः सर्वत्रेश्वरप्रार्थनया स्पर्शः कार्य्यः। सर्वदेश्वरकृपये-न्द्रियाणि बलवन्ति तिष्ठन्त्वित्यभिप्रायः॥

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः—

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

भाष्यम्—ओमित्यस्य, भूर्भुवः स्वरित्येतासां चार्था गायत्रीमन्त्रार्थे द्रष्टव्याः। महरर्थात् सर्वेभ्यो महान्, सर्वैः पूज्यश्च। सर्वेषां जनकत्वाज्जनः परमेश्वरः। दुष्टानां संतापकारकत्वात् स्वयं ज्ञानस्वरूपत्वात्, 'यस्य ज्ञानमयं तपः'[१] इति वचनस्य प्रामाण्यात् तप ईश्वरः। यदविनाशि यस्य कदाचिद् विनाशो न भवेत् तत्सत्यम्। ब्रह्म व्यापकमिति बोध्यम्॥

इतीश्वरनामभिर्मार्जनं कुर्य्यात्।

अथ प्राणायाममन्त्राः—

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥ इति प्राणायाममन्त्राः। तैत्ति० आ० प्रंप० १०। अनु० २७॥

भाष्यम्—एतेषामुच्चारणार्थविचारपुरस्सरं पूर्वोक्तप्रकारेण प्राणा-यामान् कुर्यात्॥

१. मुण्डको० १। १। ९॥

भाषार्थ—अथेन्द्रियस्पर्शः—(ओं वाक् वागित्यादि)। इस प्रकार से ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रिय बलवान् रहें।

अब ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक **मार्जन के मन्त्र** लिखे जाते हैं—(ओं भूः पुनातु शिरसीत्यादि)। ओंकार, भूः, भुवः और स्वः इनके अर्थ गायत्री मन्त्र के अर्थ में देख लेना। (महः) सबसे बड़ा और सबका पूज्य होने से परमेश्वर को मह कहते हैं। (जनः) सब जगत् के उत्पादक होने से परमेश्वर का जन नाम है। (तपः) दुष्टों को सन्तापकारी और ज्ञानस्वरूप होने से ईश्वर को तप कहते हैं, क्योंकि 'यस्येत्यादि' उपनिषद् का वाक्य इसमें प्रमाण है। (सत्यम्) अविनाशी होने से परमेश्वर का सत्य नाम है। और व्यापक होने से ब्रह्म नाम परमेश्वर का है। अर्थात् पूर्व मन्त्रोक्त सब नाम परमेश्वर ही के हैं।

इस प्रकार ईश्वर के नामों के अर्थों का स्मरण करते हुए मार्जन करें।

अब **प्राणायाम के मन्त्र** लिखते हैं—(ओं भूरित्यादि)। इनके उच्चारण और अर्थ विचारपूर्वक पूर्वोक्त प्रकार के अनुसार प्राणायामों को करे।

इस प्रकार प्राणायाम करके, अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के, यथाशक्ति बाहर ही रोक के, पुनः धीरे-धीरे भीतर लेके, पुनः बल से बाहर फेंक के रोकने से मन और आत्मा को स्थिर करके, आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामीरूप से ज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर है, उसमें अपने आप को मग्न करके, अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये। जैसा गोताखोर जल में डुबकी मारके शुद्ध होके बाहर आता है, वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध, ज्ञान, आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें।

अथाघमर्षणमन्त्राः—

अथेश्वरस्य जगदुत्पादनद्वारा स्तुत्याऽघमर्षणमन्त्रा अर्थात् पापदूरी-करणार्थाः—

ओ३म् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः॥ १॥
ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽअजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥

ओं सू॒र्या॒च॒न्द्र॒मसौ॑ धा॒ता य॑थापू॒र्वम॑कल्पयत्।
दिवं॑ च पृथि॒वीं चा॒न्तरि॑क्ष॒मथो॒ स्वः॑॥ ३॥

ऋ० अ० १०। व० ४८। मं० १-३॥

भाष्यम्—(धाता) दधाति सकलं जगत् पोषयति वा स धातेश्वरः, (वशी) वशं कर्तुं शीलमस्य सः, (यथापूर्वम्) यथा तस्य सर्वज्ञे विज्ञाने जगद्रचनज्ञानमासीत्, पूर्वकल्पसृष्टौ यथा रचनं कृतमासीत्तथैव जीवानां पुण्यपापानुसारतः प्राणिदेहानकल्पयत्। (सूर्याचन्द्रमसौ) यौ प्रत्यक्षविषयौ सूर्यचन्द्रलोकौ (दिवम्) सर्वोत्तमं स्वप्रकाशमग्न्याख्यम् (पृथिवीं) प्रत्यक्षविषयां (अन्तरिक्षम्) अर्थाद् द्वयोर्लोकयोर्मध्यमाकाशं तत्रस्थाँल्लोकांश्च (स्वः) मध्यस्थं लोकम् (अकल्पयत्) यथापूर्वं रचितवान्। ईश्वरज्ञानस्यापरिणामित्वात्, पूर्णत्वादनन्तत्वात्, सर्वदैकरसत्वाच्च नैव तस्य वृद्धिक्षयव्यभिचाराश्च कदाचिद् भवन्ति। अत एव 'यथापूर्वमकल्पयद्' इत्युक्तम्।

स एव वशीश्वरः (विश्वस्य मिषतः) सहजस्वभावेन (अहोरात्राणि) रात्रेर्दिवसस्य च विभागं यथापूर्वं (विदधत्) विधानं कृतवान्। तस्य धातुर्वशिनः परमेश्वरस्यैव (अभीद्धात्) अभितः सर्वतः इद्धात् दीप्तात् ज्ञानमयात् (तपसः) अर्थादनन्तसामर्थ्यात् (ऋतम्) यथार्थं सर्वविद्याधिकरणं वेदशास्त्रं, (सत्यम्) त्रिगुणमयं प्रकृत्यात्मकमव्यक्तं, स्थूलस्य सूक्ष्मस्य जगतः कारणं च (अध्यजायत) यथापूर्वमुत्पन्नम्।

(ततो रात्री) या तस्मादेव सामर्थ्यात् प्रलयानन्तरं भवति सा रात्रिः, (अजायत) यथापूर्वमुत्पन्नासीत्। ''तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ ऋ० अ० ८। अ० ७। व० १७। मं० ३॥'' **अग्रे सृष्टेः प्राक् तमोऽन्धकार एवासीत् तेन तमसा सकलं जगदिदमुत्पत्तेः प्राग् गूढं गुप्तमर्थाददृश्यमासीत्।**

(ततः समु०) तस्मादेव सामर्थ्यात् पृथिवीस्थोऽन्तरिक्षस्थश्च महान् समुद्रः (अजायत) यथापूर्वमुत्पन्न आसीत्। (समुद्रादर्णवात्) पश्चात् (संवत्सरः) क्षणादिलक्षणः कालोऽध्यजायत। यावज्जगत् तावत् सर्वं परमेश्वरस्य सामर्थ्यादेवोत्पन्नमित्यवधार्य्यम्॥ १-३॥

एवमुक्तगुणं परमेश्वरं संस्मृत्य पापाद्भीत्वा ततो दूरे सर्वैर्जनैः स्थातव्यम्। नैव कदाचित् केनचित् स्वल्पमपि पापं कर्त्तव्यमितीश्वराज्ञास्तीति निश्चेतव्यम्। अनेनाघमर्षणं कुर्य्यादर्थात्पापानुष्ठानं सर्वथा परित्यजेत्।

भाषार्थ—अब अघमर्षण—अर्थात् हे ईश्वर! तू जगदुत्पादक है, इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश के मन्त्र लिखते हैं—

(ओं ऋतञ्च सत्यमित्यादि)। इनका अर्थ यह है कि—

(धाता) सब जगत् का धारण और पोषण करने वाला और (वशी) सब को वश करने वाला परमेश्वर, (यथापूर्वम्) जैसा कि उस के सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था, और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी, और जैसे जीवों के पुण्य-पाप थे, उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं। (सूर्याचन्द्रमसौ) जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र लोक रचे थे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (दिवम्) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था, वैसा ही इस कल्प में भी रचा है। तथा (पृथिवीम्) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है, (अन्तरिक्षम्) जैसा पृथिवी और सूर्य्यलोक के बीच में पोलापन है, (स्वः) जितने आकाश के बीच में लोक हैं, उनको (अकल्पयत्) ईश्वर ने रचा है। जैसे अनादिकाल से लोक-लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है, वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है, उसमें वृद्धि, क्षय और उलटापन कभी नहीं होता। इसी कारण से 'यथापूर्वमकल्पयत्' इस पद का ग्रहण किया है।

(विश्वस्य मिषतः) उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस, घटिका, पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही (विदधत्) रचे हैं। इसमें कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर ने किस वस्तु से जगत् को रचा है? उसका उत्तर यह है कि (अभीद्धात् तपसः) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। जो कि ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित और सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के आधीन है। (ऋतम्) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या का खजाना वेदशास्त्र को प्रकाशित किया, जैसा कि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था। और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा। (सत्यम्) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुण से युक्त है, जिसके नाम अव्यक्त, अव्याकृत सत्, प्रधान प्रकृति हैं, जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है, सो भी (अध्यजायत) अर्थात् कार्यरूप होके पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुआ है। (ततो रात्र्यजायत) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है, सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है। इसमें ऋग्वेद का प्रमाण है

कि—"जब जब विद्यमान सृष्टि होती है, उसके पूर्व सब आकाश अन्धकाररूप रहता है, और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं, उसी का नाम महारात्रि है।" (ततः समुद्रो अर्णवः) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघमण्डल में जो महासमुद्र है, सो पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है।

(समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है। वेद से लेके पृथिवीपर्यन्त जो यह जगत् है, सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है। और ईश्वर सबको उत्पन्न करके, सब में व्यापक होके अन्तर्यामीरूप से सबके पाप-पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सबको यथावत् फल दे रहा है॥ १-३॥

ऐसा निश्चत जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन, कर्म और वचन से पापकर्मों को कभी न करें। इसी का नाम अघमर्षण है, अर्थात् ईश्वर सबके अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है इससे पापकर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें।

'शन्नो देवी'रिति पुनराचामेत्। ततो गायत्र्यादिमन्त्रार्थान् मनसा विचारयेत्। पुनः परमेश्वरेणैव सूर्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थ-स्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा परं ब्रह्म प्रार्थयेत्।

भाषार्थ—'शन्नो देवीरिति' इस मन्त्र से **तीन आचमन** करे। तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति, अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर, पश्चात् प्रार्थना करे। अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहे, और सदा पश्चात्ताप करे कि मनुष्यशरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता। जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है, वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें। इस काम में परमेश्वर हमको सहाय करे कि जिससे हम लोग सबको सदा सुख देते रहें।

तदनन्तर ईश्वर की उपासना करे, सो दो प्रकार की है—एक सगुण और दूसरी निर्गुण। जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक, अन्तर्यामी, सब का उत्पादक, धारण करनेहारा, मङ्गलमय, शुद्ध, सनातन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थों का

देनेवाला, सब का पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा और न्यायाधीश है। इत्यादि ईश्वर के गुण-विचारपूर्वक उपासना करने का नाम **सगुणोपासना** है। तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर अनादि, अनन्त है, जिसका आदि और अन्त नहीं। अजन्मा, अमृत्यु, जिसका जन्म और मरण नहीं। निराकार, निर्विकार जिसका आकार और जिसमें कोई विकार नहीं। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान और मलीनता नहीं है। जिसका परिमाण, छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन नहीं होता। जो ह्रस्व, दीर्घ और शोकातुर कभी नहीं होता। जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष और शोक कभी नहीं होते। जो उलटा काम कभी नहीं करता, इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना, वह **निर्गुणोपासना** कहाती है।

अथ मनसापरिक्रमा-मन्त्राः—

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ २॥

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ४॥

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ५॥

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो

नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ६॥

अथर्व० कां० ३। अ० ६। सू० २७। मं० १-६॥

भाष्यम्—(प्राची दि०) सर्वासु दिक्षु व्यापकमीश्वरं संध्यायामग्न्यादिभिर्नामभिः प्रार्थयेत्। यत्र स्वस्य मुखं सा प्राची दिक् तथा यस्यां सूर्य उदेति सापि प्राची दिगस्ति। तस्या अधिपतिरग्निरर्थात् ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः, (असितः) बन्धनरहितोऽस्माकं सदा रक्षिता भवतु। यस्यादित्याः प्राणाः किरणाश्चेषवो यैः सर्वं जगद् रक्षति, तेभ्य इन्द्रियाधिपतिभ्यश्शरीररक्षितृभ्य इषुरूपेभ्यः प्राणेभ्यो वारं वारं नमोऽस्तु। कस्मै प्रयोजनाय? यः कश्चिदस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं (वः) तेषां प्राणानां (जम्भे) अर्थाद्वशे दध्मः। यतस्सोऽनर्थान्निवर्त्य स्वमित्रं भवेत्। वयं च तस्य मित्राणि भवेम॥ १॥

(दक्षिणा०) दक्षिणस्या दिश इन्द्रः परमैश्वर्य्ययुक्तः परमेश्वरोऽधिपतिरस्ति, स एव कृपयाऽस्माकं रक्षिता भवतु। अग्रे पूर्ववदन्वयः कर्त्तव्यः॥ २॥

तथा (प्रतीची दिग्०) अस्या वरुणः सर्वोत्तमोऽधिपतिः परमेश्वरोऽस्माकं रक्षिता भवेदिति पूर्ववत्॥ ३॥

(उदीची०) सोमः सर्वजगदुत्पादकोऽधिपतिरीश्वरोऽस्माकं रक्षिता स्यादिति॥ ४॥

(ध्रुवा दिक्) अर्थादधो दिक्, अस्या विष्णुर्व्यापक ईश्वरोऽधिपतिः, सोऽस्यामस्मान् रक्षेत्। अन्यत् पूर्ववत्॥ ५॥

(ऊर्ध्वा दिक्०) अस्या बृहस्पतिरर्थाद् बृहत्या वाचो, बृहतो वेदशास्त्रस्य, बृहतामाकाशादीनां च पतिर्बृहस्पतिर्यः सर्वजगतोऽधिपतिः सर्वतोऽस्मान् रक्षेत्। अग्रे पूर्ववद्योजनीयम्। सर्वे मनुष्याः सर्वशक्तिमन्तं सर्वगुरुं न्यायकारिणं दयालुं पितृवत्पालकं सर्वासु दिक्षु सर्वत्र रक्षकं परमेश्वरमेव मन्येरन्नित्यभिप्रायः॥ ६॥

भाषार्थ—(प्राची दिगग्निरधिपतिः) जो प्राची दिक् अर्थात् जिस ओर अपना मुख हो [तथा जिस ओर सूर्य उदय हो,] उस ओर अग्नि जो ज्ञानस्वरूप अधिपति, जो सब जगत् का स्वामी, (असितः) बन्धनरहित, (रक्षिता) सब प्रकार से रक्षा करने वाला, (आदित्या इषवः) जिसके बाण आदित्य की किरण हैं। उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग वारम्वार नमस्कार करते हैं। (रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु) जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करनेवाले हैं, और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देनेवाले हैं, उनको हमारा नमस्कार हो। इसलिए कि जो प्राणी अज्ञान से हमसे द्वेष करता है, और जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष से तथा पापी पुरुष से हम लोग द्वेष करते हैं, उन सब की बुराई को उन बाणरूप किरण मुखरूप के बीच में दग्ध कर देते हैं कि जिससे किसी से हम लोग वैर न करें, और कोई भी प्राणी हमसे वैर न करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर मित्रभाव से वर्त्तें॥ १॥

(दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिः) जो हमारे दाहिनी ओर दक्षिण दिशा है, उसका अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण ऐश्वर्यवाला है। (तिरश्चिराजी रक्षिता) जो जीव कीट, पतङ्ग, वृश्चिक आदि तिर्य्यक् कहाते हैं, उनकी राजी जो पंक्ति है, उनसे रक्षा करनेवाला एक परमेश्वर है। (पितर इषवः) जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं। (तेभ्यो नमो०) आगे का अर्थ पूर्व के समान जान लेना॥ २॥

(प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः) जो पश्चिम दिशा अर्थात् अपने पृष्ठ भाग में है, उसमें वरुण जो सबसे उत्तम सबका राजा परमेश्वर है, (पृदाकू रक्षितान्नमिषवः) जो बड़े-बड़े अजगर सर्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करनेवाला है। जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के समान हैं, श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। (तेभ्यो नमो०) इसका अर्थ पूर्व मन्त्र के समान जान लेना॥ ३॥

(उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः) जो अपनी बाईं ओर उत्तर दिशा है, उसमें सोम नाम से अर्थात् शान्त्यादि गुणों से आनन्द करनेवाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये। (स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः) जो अच्छी प्रकार अजन्मा और रक्षा करनेवाला है। जिसके बाण विद्युत् हैं। (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना॥ ४॥

(ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः) ध्रुव दिशा अर्थात् जो अपने नीचे की ओर है, उसमें विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना। (कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः) जिसके हरित रङ्गवाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं। जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं, उनसे अधोदिशा में हमारी रक्षा करे। (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना॥ ५॥

(ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः) जो अपने ऊपर दिशा है, उसमें बृहस्पति जो कि वाणी का स्वामी परमेश्वर है, उसको अपना रक्षक जानें। जिसके

बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं, उनसे हमारी रक्षा करे। (तेभ्यो०) आगे पूर्ववत् जान लेना॥ ६ ॥

अथोपस्थानमन्त्राः—

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १ ॥

यजुः० अ० ३५। मं० १४

भाष्यम्—हे परमात्मन्! (सूर्यम्) चराचरात्मानं त्वां, (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणास्सन्तो वयम्, (उदगन्म) अर्थात् उत्कृष्टश्रद्धावन्तो भूत्वा वयं भवन्तं प्राप्नुयाम। कथंभूतं त्वाम्? (ज्योतिः) स्वप्रकाशम् (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्टम्, (देवत्रा) सर्वेषु दिव्यगुणवत्सु पदार्थेषु ह्यनन्तदिव्यगुणैर्युक्तं (देवम्) धर्मात्मनां मुमुक्षूणां मुक्तानां च सर्वानन्दस्य दातारं मोदयितारं च, (उत्तरम्) जगत्प्रलयानन्तरं नित्यस्वरूपत्वाद् विराजमानं, (स्वः) सर्वानन्दस्वरूपं (तमसस्परि) अज्ञानान्धकारात् पृथग्भूतं भवन्तं प्राप्तुं वयं नित्यं प्रार्थयामहे। भवान् स्वकृपया सद्यः प्राप्नोतु न इति॥ १ ॥

भाषार्थ—अब उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ करते हैं जिनसे परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना की जाती है—

हे परमेश्वर! (तमसस्परि स्वः) सब अन्धकार से अलग प्रकाशस्वरूप, (उत्तरम्) प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवालों में प्रकाशक, (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (ज्योतिरुत्तमम्) ज्ञानस्वरूप और सबसे उत्तम आप को जान के (वयम् उदगन्म) हम लोग सत्य से प्राप्त हुए हैं। हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है, क्योंकि हम लोग आपके शरण हैं॥ १ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २ ॥ —यजुः० अ० ३३। मं० ३१॥

भाष्यम्—(केतवः) किरणा विविधजगतः पृथक् पृथग्रचनादिनियामका ज्ञापकाः प्रकाशका ईश्वरस्य गुणाः, (दृशे विश्वाय) विश्वं द्रष्टुं (त्यम्) तं पूर्वोक्तं (देवं सूर्यम्) चराचरात्मानं परमेश्वरम् (उद्वहन्ति) उत्कृष्टतया प्रापयन्ति ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति वै। (उ) इति वितर्के, नैव पृथक् विविधनियमान् दृष्ट्वा नास्तिका अपीश्वरं त्यक्तुं समर्था भवन्तीत्यभिप्रायः। कथं भूतं देवम्? (जातवेदसम्) जाता ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदा सर्वज्ञानप्रदा यस्मात्, तथा जातानि प्रकृत्यादीनि भूतान्यसंख्यातानि विन्दति।

यद्वा जातं सकलं जगद्वेत्ति जानाति यः स जातवेदाः, तं जातवेदसं सर्वे मनुष्यास्तमेवैकं प्राप्तुमुपासितुमिच्छन्त्वित्यभिप्रायः॥

भाषार्थ—(उदु त्यं०)। (जातवेदसं) जिससे ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं, और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है, जो सब जगत् का उत्पादक है, सो परमेश्वर जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है। (देवम्) जो सब देवों का देव, और (सूर्यम्) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है (त्वम्) उस परमात्मा को (दृशे विश्वाय) विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं। (उद्वहन्ति केतवः) 'केतवः' अर्थात् वेद की श्रुति और जगत् के पृथक् पृथक् रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जनाते और प्राप्त कराते हैं। उस विश्व के आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम उपासना सदा करें, अन्य किसी की नहीं॥ २॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳसूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ ३ ॥

—यजुः० अ० ७। मं० ४२॥

भाष्यम्—स एव देवः सूर्य्यः (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य च (आत्मा) अतति नैरन्तर्य्येण सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा। तथा (आप्रा०) द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं चैतदादि सर्वं जगद् रचयित्वा आसमन्ताद् धारयन् सन् रक्षति। (चक्षुः) एष एवैतेषां प्रकाशकत्वाद् बाह्याभ्यन्तरयोश्चक्षुः प्रकाशको विज्ञानमयो विज्ञापकश्चास्ति। अत एव (मित्रस्य) सर्वेषु द्रोहरहितस्य सूर्य्यलोकस्य प्राणस्य वा, (वरुणस्य) वरेषु श्रेष्ठेषु कर्मसु गुणेषु वर्त्तमानस्य च, (अग्नेः) शिल्पविद्याहेतो रूपगुणदाहप्रकाशकस्य विद्युतो भ्राजमानस्यापि चक्षुः सर्वसत्योपदेष्टा प्रकाशकश्च (देवानाम्) स दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये (उदगात्) उत्कृष्टतया प्राप्तोऽस्ति प्रकाशको वा। तदेव ब्रह्म (चित्रम्) अद्भुतस्वरूपम्। अत्र प्रमाणम्—"आश्चर्य्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ कठोपनि० वल्ली २॥" **आश्चर्य्यस्वरूपत्वाद् ब्रह्मणः। तदेव ब्रह्म सर्वेषां चास्माकं (अनीकम्) सर्वदुःखनाशार्थं कामक्रोधादिशत्रुविनाशार्थं बलमस्ति। तद्विहाय मनुष्याणां सर्वसुखकरं शरणमन्यन्नास्त्येवेति वेद्यम्।**

(स्वाहा) अथात्र स्वाहाशब्दार्थे प्रमाणम् निरुक्तकारा आहुः— "स्वाहाकृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा, स्वा वागाहेति वा, स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा, तासामेषा भवति। निरु० अ० ८। खं० २०॥" **स्वाहाशब्दस्यायमर्थः—(सु आहेति वा) सु सुष्ठु कोमलं मधुरं**

कल्याणकरं प्रियं वचनं सर्वैर्मनुष्यैः सदा वक्तव्यम्। (स्वा वागाहेति वा) या स्वकीया वाग् ज्ञानमध्ये वर्त्तते, सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम्। (स्वं प्राहेति वा) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम्, न परपदार्थं प्रति चेति।(स्वाहुतं ह०) सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य संस्कृत्य हविः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपर्य्यायार्थाः। स्वमेव पदार्थं प्रत्याह वयं सर्वदा सत्यं वदाम इति, न कदाचित् परपदार्थं प्रति मिथ्या वदेमेति॥ ३॥

भाषार्थ—(चित्रं देवाना०)। (सूर्य्य आत्मा०) प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है, उसको सूर्य कहते हैं। (आप्रा द्या०) जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बनाके धारण और रक्षण करनेवाला है, (चक्षुर्मित्रस्य) जो मित्र अर्थात् रागद्वेषरहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षु प्रकाश करनेवाला है, (वरुणस्या०) सब उत्तम कामों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण अपान और अग्नि का प्रकाश करनेवाला है, (चित्रं देवानां) जो अद्भुतस्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है, (अनीकम्) जो सकल मनुष्यों के सब दु:ख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है, वह परमेश्वर (उदगात्) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे॥ ३॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ ४॥

यजु:० अ० ३६। मं० २४॥

भाष्यम्—(चक्षुः) यत् सर्वदृक् (देवहितम्) देवेभ्यो हितं दिव्यगुणवतां धर्मात्मनां विदुषां स्वसेवकानां च हितकारि वर्त्तते यत् (पुरस्तात) सृष्टेः प्राक् (शुक्रम्) सर्वजगत्कर्तृ शुद्धमासीद्, इदानीमपि तादृशमेव चास्ति। तदेव (उच्चरत्) अर्थात् उत्कृष्टतया सर्वत्र व्याप्तं विज्ञानस्वरूपं (उद्) प्रलयादूर्ध्वं सर्वसामर्थ्यं स्थास्यति। (तत्) ब्रह्म (पश्येम शरदः शतम्) वयं शतं वर्षाणि तस्यैव प्रेक्षणं कुर्महे। तत्कृपया (जीवेम शरदः शतम्) शतं वर्षाणि प्राणान् धारयेमहि। (शृणुयाम शरदः शतम्) तस्य गुणेषु श्रद्धाविश्वासवन्तो वयं तमेव शृणुयाम। तथा च तद् ब्रह्म तद्गुणांश्च (प्रब्रवाम श०) अन्येभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यमुपदिशेम। (अदीनाः स्याम श०) एवं च तदुपासनेन, तद्विश्वासेन, तत्कृपया च शतवर्षपर्यन्तमदीनाः स्याम भवेम। मा कदाचित्कस्यापि समीपे दीनता कर्त्तव्या भवेन्नो दारिद्र्यं च। सर्वदा सर्वथा ब्रह्मकृपया स्वतन्त्रा वयं भवेम। तथा (भूयश्च श०) वयं तस्यैवानुग्रहेण भूयः शताच्छरदः शताद्वर्षेभ्योऽप्यधिकं पश्येम; जीवेम,

शृणुयाम, प्रब्राम, अदीनाः स्याम चेत्यन्वयः। अर्थान्नैव मनुष्यास्तमतिकृपालुं परमेश्वरं त्यक्त्वाऽन्यमुपासीरन् याचेरन्नित्यभिप्रायः। ''योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवꣳस देवानाम्॥ श० कां० १४। अ० ४। २। २२॥'' **सर्वे मनुष्याः परमेश्वरमेवोपासीरन्। यस्तस्मादन्यस्योपासनां करोति, स इन्द्रियारामो गर्द-भवत्सर्वैश्शिष्टैर्विज्ञेय इति निश्चयः॥ ४॥**

कृताञ्जलिरत्यन्तश्रद्धालुर्भूत्वैतैर्मन्त्रैः स्तुवन् सर्वकालसिद्ध्यर्थं परमेश्वरं प्रार्थयेत्।

भाषार्थ—(तच्चक्षुर्देवहितम्) जो ब्रह्म सब का द्रष्टा, धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक, तथा (पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्) सृष्टि के पूर्व,पश्चात् और मध्य में सत्यरूप से वर्त्तमान रहता, और सब जगत् का करनेवाला है। (पश्येम शरदः शतम्) उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्य्यन्त देखें, (जीवेम शरदः शतम्) जीवें, (शृणुयाम शरदः शतम्) सुनें (प्रब्रवाम शरदः०) उसी ब्रह्म का उपदेश करें, (अदीनाः स्याम०) और उसकी कृपा से किसी के अधीन न रहें। (भूयश्च शरदः शतात्) उसी परमेश्वर की आज्ञापालन और कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें। अर्थात् आरोग्य शरीर, दृढ़ इन्द्रिय, शुद्ध मन और आनन्द सहित हमारा आत्मा सदा रहे। यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों का उपास्यदेव है। जो मनुष्य इसको छोड़ के दूसरे की उपासना करता है, वह पशु के समान होके सब दिन दु:ख भोगता रहता है॥ ४॥

इसलिये प्रेम में अत्यन्त मग्न होके, अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के, इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें।

अथ गुरुमन्त्रः—

ओ३म्, (यजु० अ० ४०। मं० १७) **भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥**

यजु:० अ० ३६। मं० ३॥ ऋ० मं० ३। सू० ६२। मं० १०॥

एवं त्रिषु वेदेषु समानो मन्त्रः॥

भाष्यम्—अस्य सर्वोत्कृष्टस्य गायत्रीमन्त्रस्य संक्षेपेणार्थ उच्यते—'अ उ म्' एतत्त्रयं मिलित्वा 'ओम्' इत्यक्षरं भवति। यथाह मनुः—

''अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च॥''

मनु० अ० २। श्लोक ७६॥

एतच्च सर्वोत्तमं प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति। एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम्। तद्यथा—

अकारेण विराडग्निविश्वादीनि—(विराट्) विविधं चराचरं जगद् राजयते प्रकाशयते स विराट् सर्वात्मेश्वरः। (अग्निः) अच्यते प्राप्यते सत्क्रियते वा वेदादिभिः शास्त्रैर्विद्वद्भिश्चेत्यग्निः परमेश्वरः। (विश्वः) विष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् स विश्वः। यद्वा विष्टोस्ति प्रकृत्यादिषु यः स विश्वः। एतदाद्यर्था अकारेण विज्ञेयाः।

उकारेण हिरण्यगर्भवायुतैजसादीनि। तद्यथा—(हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य, तथा सूर्य्यादीनां तेजसां यो गर्भोऽधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः। अत्र प्रमाणम्—'ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृतꣳहिरण्यम्॥ श०का० ६। अ० ७। ब्रा० १। कं० २॥ **यशो वै हिरण्यम्॥** ऐ०पं० ७। खं० १८॥' (वायुः) यो वाति जानाति धारयत्यनन्तबलत्वात् सर्वं जगत् स वायुः। स चेश्वर एव भवितुमर्हति नान्यः। 'तद्वायुः'[१] इति मन्त्रवर्णनादर्थाद् ब्रह्मणो वायुसंज्ञास्ति। (तैजसः) सूर्य्यादीनां प्रकाशकत्वात्स्वयंप्रकाशत्वात् तैजस ईश्वरः। एतदाद्यर्था उकाराद् विज्ञातव्याः।

मकारेणेश्वरादित्यप्राज्ञादीनि नामानि बोध्यानि। तद्यथा—(ईश्वरः) ईष्टेऽसौ सर्वशक्तिमान् न्यायकारीश्वरः। (आदित्यः) अविनाशित्वादादित्यः परमात्मा। (प्राज्ञः) प्रजानाति सकलं जगदिति प्रज्ञः, प्रज्ञ एव प्राज्ञश्च परमात्मैवेति। एतदाद्यर्था मकारेण निश्चेतव्या ध्येयाश्चेति।

अथ महाव्याहृत्यर्थाः संक्षेपतः—''भूरिति वै प्राणः। भुवरित्यपानः। स्वरिति व्यानः॥ इति तैत्तिरीयोपनिषद्वचनम्। प्रपा० ७। अनु० ६॥'' (भूः) प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः स प्राणः, प्राणादपि प्रियस्वरूपो वा, स चेश्वर एव। अयमर्थो भूशब्दस्य ज्ञेयः। (भुवः) यो मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वं दुःखमपानयति दूरीकरोति सोऽपानो दयालुरीश्वरोऽस्ति। अयं भुवःशब्दार्थोऽस्तीति बोध्यम्। (स्वः) यदभिव्याप्य व्यानयति चेष्टयति प्राणादि सकलं जगत् स व्यानः, सर्वाधिष्ठानं बृहद् ब्रह्मेति। खल्वयं स्वःशब्दार्थोऽस्तीति मन्तव्यम्। एतदाद्यर्था महाव्याहृतीनां ज्ञातव्याः।

(सवितुः) सुनोति सूयते सुवति वोत्पादयति सृजति सकलं जगत् स सर्वपिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा तस्यः 'सवितुः प्रसवे' इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता योऽर्थोऽस्ति स सवितेत्युच्यत इति मन्तव्यम्। (वरेण्यम्)

१. यजुः ३२.१॥

यद्वरं वर्त्तुमर्हमतिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् (भर्गः) यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपं तद्भर्गः। (देवस्य) यो दीव्यति प्रकाशयति खल्वानन्दयति सर्वं विश्वं स देवः, तस्य देवस्य (धीमहि) तमेव परमात्मानं वयं नित्यमुपासीमहि। कस्मै प्रयोजनाय? तस्य धारणेन विज्ञानादिबलेनैव वयं पुष्टा दृढा सुखिनश्च भवेमेत्यस्मै प्रयोजनाय। तथा च (यः) परमेश्वरः (नः) अस्माकं (धियः) धारणवतीर्बुद्धीः (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्।

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अज, हे निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्, हे करुणामृतवारिधे! सवितुर्देवस्य तव यद्वरेण्यं भर्गस्तद्वयं धीमहि। कस्मै प्रयोजनाय? यः सविता देवः परमेश्वरः स नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात्। यो हि सम्यग्ध्यातः प्रार्थितः सर्वेष्टदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण स्वशक्त्या च ब्रह्मचर्यविद्याविज्ञानसद्धर्मजितेन्द्रियत्वपरब्रह्मानन्दप्राप्तिमतीरस्माकं धीः कुर्य्यादस्मै प्रयोजनाय। तत्परमात्मस्वरूपं वयं धीमहीति संक्षेपतो गायत्र्यर्थो विज्ञेयः॥

एवं प्रातः सायं द्वयोः सन्ध्योरेकान्तदेशं गत्वा शान्तो भूत्वा यतात्मा सन् परमेश्वरं प्रतिदिनं ध्यायेत्।

भाषार्थ—अथ गुरुमन्त्रः—(ओम् भूर्भुवः स्वः)। अकार, उकार और मकार के योग से 'ओम्' यह अक्षर सिद्ध है, सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है, जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं। जैसा पिता-पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है, वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है।

जैसे अकार से—(विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करनेवाला है। (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है, और जो सर्वत्र प्रविष्ट है। इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये।

उकार से—(हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्य्यादि लोक हैं, और जो प्रकाश करनेहारे सूर्य्यादिलोकों का अधिष्ठान है। इससे ईश्वर को '**हिरण्यगर्भ**' कहते हैं। हिरण्य के नाम ज्योति, अमृत और कीर्त्ति हैं। (वायुः) जो अनन्त बलवाला सब जगत् का धारण करनेहारा है। (तैजसः) जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है। इत्यादि अर्थ उकारमात्रा से जानना चाहिये।

तथा मकार से —(ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक, सर्वशक्तिमान्

स्वामी और न्यायकारी है। (आदित्यः) जो नाशरहित है। (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है। इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना। यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया।

अब संक्षेप से महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं—(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु, और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम 'भूः' है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को, सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता, और सबका ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिख दिया।

अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं—(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा, और ऐश्वर्य्य का देनेवाला है, (देवस्य) जो सबके आत्माओं का प्रकाश करनेवाला और सब सुखों का दाता है, उसका (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य, (भर्गः) शुद्ध विज्ञान स्वरूप है, (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये? कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे।

इसलिये सब लोगों को चाहिये कि सत्, चित्, आनन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें, कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्यदेहरूप वृक्ष के चार फल हैं, वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों। यह गायत्री मन्त्र का अर्थ संक्षेप से हो चुका॥

अथ समर्पणम्—

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः॥

तत ईश्वरं नमस्कुर्यात्—

भाषार्थ—इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करे—कि हे ईश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जो-जो उत्तम काम हम लोग करते हैं, वे सब आपके अर्पण हैं। जिससे हम लोग आपको प्राप्त होके धर्म—जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ—जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम—जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है, और मोक्ष—जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो॥

इसके पीछे ईश्वर को नमस्कार करे—

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

यजुः० अ० १६। मं० ४१॥

भाष्यम्—(नमः शम्भवाय च) यः सुखस्वरूपः परमेश्वरोऽस्ति, तं वयं नमस्कुर्महे। (मयोभवाय च) यः संसारे सर्वोत्तमसौख्यप्रदातास्ति, तं वयं नमस्कुर्महे। (नमः शङ्कराय च) यः कल्याणकारकः सन् धर्मयुक्तानि कार्य्याण्येव करोति, तं वयं नमस्कुर्महे। (मयस्कराय च) यः स्वभक्तान् सुखकारकत्वाद् धर्मकार्य्येषु युनक्ति, तं वयं नमस्कुर्महे। (नमः शिवाय च शिवतराय च) योऽत्यन्तमङ्गलस्वरूपः सन् धार्मिकमनुष्येभ्यो मोक्षसुख-प्रदातास्ति, तस्मै परमेश्वरायास्माकमनेकधा नमोऽस्तु॥

भाषार्थ—(नमः शम्भवाय च) जो सुखस्वरूप, (मयोभवाय च) संसार के उत्तम सुखों का देनेवाला, (नमः शङ्कराय च) कल्याण का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला, (मयस्कराय च) अपने भक्तों को सुख देने वाला और धर्म्म कामों में युक्त करने वाला, (नमः शिवाय च शिवतराय च) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देनेहारा है, उसको हमारा वारम्वार नमस्कार हो॥

इति सन्ध्योपासनविधिः

अथाग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥ १॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।
वसोर्वसोवसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम॥ २॥

अथर्व० कां० १९। सू० ५५। मं० ३, ४॥

तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। स ज्योतिष्याऽज्योतिषो दर्शनात् सोऽस्याः कालः सा सन्ध्या। तत् सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम्॥ ३॥

षड्विंश ब्रा० प्रपा० ४। खं० ५॥

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते॥ ४॥ तैत्तिरीय आ० २। प्रपा० २। अनु० २॥

[पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥ ५॥]
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ ६॥

मनु० अ० २। श्लो० [१०१,] १०३॥

भाष्यम्—अयं (नः) अस्माकं (गृहपतिः०) गृहात्मपालकोऽग्निः भौतिकः परमेश्वरश्च (प्रातः-प्रातः) तथा (सायं-सायं) च परिचरित-स्सूपासितः सन् (सौमनसस्य दाता) आरोग्यस्यानन्दस्य च दाता भवति। तथा (वसोर्व०) उत्तमोत्तमपदार्थस्य च। अत एव परमेश्वरः (वसुदानः) वसुप्रदातास्ति। हे परमेश्वर! एवंभूतस्त्वमस्माकं राज्यादिव्यवहारे हृदये च (एधि) प्राप्तो भव। तथा भौतिकोऽप्यग्निरत्र ग्राह्यः। (वयं) हे परमेश्वर! एवं (त्वाम्) त्वा (इन्धानाः) प्रकाशयितारस्सन्तो वयं (तन्वम्) शरीरं (पुषेम) पुष्टं कुर्य्याम। तथाग्निहोत्रादिकर्मणा भौतिकमग्निमिन्धानाः प्रदीपयितारः सन्तः सर्वे वयं पुष्येम॥ १॥

(प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो०) अस्यार्थः पूर्ववद्विज्ञेयः। परन्त्वयं विशेषः— वयमग्निहोत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तः सन्तः (शतहिमाः) शतं हिमा हेमन्तर्तवो गच्छन्ति येषु संवत्सरेषु ते शतहिमा यावत्स्युस्तावत् (ऋधेम) वर्द्धेमहि। एवं कृतेन कर्म्मणा नोऽस्माकं नैव कदाचिद्धानिर्भवेदितीच्छामः॥ २॥

भाषार्थ—(सायंसायं०) यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त होके (सौमनसस्य दाता) जैसे आरोग्य और आनन्द का देने वाला है उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तु का देने वाला है। इसी से परमेश्वर (वसुदानः) वसु अर्थात् धन का देने वाला प्रसिद्ध है। हे परमेश्वर! इस प्रकार आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त में प्रकाशित रहिये। तथा इस मन्त्र में अग्निहोत्र आदि करने के लिये भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने योग्य है। (वयं त्वे०) हे परमेश्वर! पूर्वोक्त प्रकार से हम आपको प्रकाश करते हुए अपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें। इसी प्रकार भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुए सब संसार की पुष्टि करके पुष्ट हों॥ १॥

(प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो०) इस मन्त्र का अर्थ पूर्व मन्त्र के तुल्य जानो। परन्तु यह विशेष है कि—अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग (शतहिमाः) सौ हेमन्त ऋतु बीत जायं जिन वर्षों में, अर्थात् सौ वर्ष पर्यन्त (ऋधेम) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होते रहें। और पूर्वोक्त प्रकार से अग्निहोत्रादि कर्म करके हमारी हानि कभी न हो, ऐसी इच्छा करते हैं॥ २॥

(तस्माद् ब्राह्मणो०) ब्रह्म का उपासक मनुष्य रात्रि और दिवस के सन्धि समय में नित्य उपासना करे। जो प्रकाश और अप्रकाश का संयोग है, वही सन्ध्या का काल जानना। और उस समय में जो सन्ध्योपासन की ध्यानक्रिया करनी होती है, वही सन्ध्या है। और जो एक ईश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना न करनी तथा सन्ध्योपासन कभी न छोड़ देना, इसी को सन्ध्योपासना कहते हैं॥ ३॥

(उद्यन्तमस्तं यान्तं) जब सूर्य्य के उदय और अस्त का समय आवे, उसमें नित्य प्रकाशस्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुआ, ब्रह्मोपासक ही मनुष्य सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि दो समय में परमेश्वर की नित्य उपासना किया करें॥ ४॥

इसमें **मनुस्मृति** की भी साक्षी है कि दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्योदय पर्य्यन्त प्रातःसन्ध्या, और सूर्य्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्य्यन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना गायत्र्यादि मन्त्र के अर्थ-विचारपूर्वक नित्य करें॥ ५॥

(न तिष्ठति तु०) जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता, उसको शूद्र के समान समझ कर द्विजकुल से अलग करके शूद्रकुल में रख देना चाहिये। वह सेवाकर्म किया करे, और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जानकर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें॥ ६॥

इत्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनप्रमाणानि॥

इति प्रथमो ब्रह्मयज्ञः समाप्तः॥

अथ द्वितीयोऽग्निहोत्रो देवयज्ञः प्रोच्यते

उसका आचरण इस प्रकार से करना चाहिये कि सन्ध्योपासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है। उसके लिये, सोना, चांदी, तांबा, लोहा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये, जिसका परिमाण सोलह अंगुल चौड़ा, सोलह अंगुल गहिरा और उसका तला चार अंगुल का लम्बा चौड़ा रहे। एक चमसा जिसकी डंडी सोलह अंगुल और उसके अग्रभाग में अंगूठा की यवरेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा आचमनी के समान बनवा लेवे, सो भी सोना, चांदी वा पलाशादि लकड़ी का हो। एक आज्यस्थाली अर्थात् घृतादि सामग्री रखने का पात्र सोना, चांदी वा पूर्वोक्त लकड़ी का बनवा लेवे। एक जल का पात्र तथा एक चिमटा और पलाशादि की लकड़ी समिधा के लिये रख लेवे।

पुनः घृत को गर्म कर छान लेवे। और एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर पीस के मिलाकर उक्त पात्र के तुल्य दूसरे पात्र में रख छोड़े। जब अग्निहोत्र करे तब शुद्ध स्थान में बैठ के पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे। जल के पात्र में जल और घी के पात्र में एक छटांक वा अधिक जितना सामर्थ्य हो, उतने शोधे हुए घी को निकाल कर अग्नि में तपा के सामने रख लेवे। तथा चमसे को भी रख लेवे। पुनः उन्हीं पलाशादि वा चन्दनादि लकड़ियों को वेदी में रखकर, उनमें आगी धरके पंखे से प्रदीप्त कर नीचे लिखे मन्त्रों में से एक एक मन्त्र से एक एक आहुति देता जाय, प्रातःकाल वा सायंकाल में। अथवा एक समय में करे, तो सब मन्त्रों से सब आहुति किया करे।

अथाग्निहोत्रहोमकरणार्थाः मन्त्राः—

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा॥ १॥

ओं सूर्य्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा॥ २॥

ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा॥ ३॥

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा॥ ४॥

एते चत्वारो मन्त्राः प्रातःकालस्य सन्तीति बोध्यम्।

ओमग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ १ ॥

ओमग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा॥ २ ॥

'अग्निर्ज्योतिः०'॥ ३ ॥ इति मन्त्रं मनसोच्चार्य्य तृतीयाहुतिर्देया।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या।

जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा॥ ४॥ य० अ० ३। मं० ९,१०॥

एते सायंकालस्य मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम्।

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समाना मन्त्राः—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा॥ १ ॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥ २ ॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥४॥

ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥५॥

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा॥ ६ ॥

भाष्यम्—(सूर्य्यो०) यश्चराचरात्मा ज्योतिषां प्रकाशकानामपि ज्योतिः प्रकाशकः सर्वप्राणः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै स्वाहाऽर्थात् तदाज्ञापालनार्थं सर्वजगदुपकारायैकाहुतिं दद्मः॥ १ ॥

(सूर्य्यो व०) यो वर्च्चः सर्वविद् यो ज्योतिषां ज्ञानवतां जीवानामपि वर्च्चोऽन्तर्यामितया सत्योपदेष्टा, सर्वात्मा सूर्य्यः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै०॥ २॥

(ज्योतिः सूर्य्यः०) यः स्वयंप्रकाशः, सर्वजगत्प्रकाशकः सूर्यो जगदीश्वरोऽस्ति, तस्मै०॥ ३॥

(सजू०) यो देवेन द्योतकेन सवित्रा सूर्य्यलोकेन जीवेन च सह, तथा (इन्द्रवत्या) सूर्य्यप्रकाशवत्योषसाथवा जीववत्या मानसवृत्त्या (सजूः) सह वर्त्तमानः परमेश्वरोऽस्ति, सः (जुषाणः) सम्प्रीत्या वर्त्तमानः सन् (सूर्य्यः) सर्वात्मा कृपाकटाक्षेणास्मान् (वेतु) विद्यादिसद्गुणेषु जातविज्ञानान् करोतु, तस्मै०॥ ४॥

इमाश्चतस्त्र आहुतीः प्रातरग्निहोत्रे कुर्वन्तु।

अथ सायंकालाहुतयः—(अग्नि०) योऽग्निर्ज्ञानस्वरूपो ज्ञानप्रदश्च, ज्योतिषां ज्योतिः परमेश्वरोऽस्ति, तस्मै०॥ १ ॥

(अग्निर्वर्च्चो०) यः पूर्वोक्तोऽग्निरनन्तविद्यः, आत्मप्रकाशकः सर्वपदार्थप्रकाशकश्च सूर्यादिद्योतकोऽस्ति, तस्मै०॥ २॥

(अग्निर्ज्योतिः) इत्येनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थश्च पूर्ववत्॥ ३॥

(सजूर्दे०) यः पूर्वोक्तेन देवेन सवित्रा सह परमेश्वरः सजूरस्ति। यश्चेन्द्रवत्या वायुश्चन्द्रवत्या रात्र्या सह सजूर्वर्त्तते, सोऽग्निः (जुषाणः) सम्प्रीतोऽस्मान् (वेतु) नित्यानन्दमोक्षसुखया स्वकृपया कामयतु। तस्मै जगदीश्वराय स्वाहेति पूर्ववत्॥ ४॥

एताभिः सायंकालेऽग्निहोत्रिणो जुह्वति। एकस्मिन् काले सर्वाभिर्वा।

(ओं भूर०) एतानि सर्वाणीश्वरनामान्येव वेद्यानि। एतेषामर्था गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः॥ १-५॥

(सर्वं वै०) हे जगदीश्वर! यदिदमस्माभिः परोपकारार्थं कर्म क्रियते, भवत्कृपया परोपकारायालं भवत्विति। एतदर्थमेतत्कर्म्म तुभ्यं समर्प्यते॥ ६॥

एवं प्रातःसायं सन्ध्योपासनकरणानन्तरमेतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाऽग्रे यावदिच्छा तावद् गायत्रीमन्त्रेण स्वाहान्तेन होमं कुर्यात्।

अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं यस्मिन् कर्मणि क्रियते 'तदग्निहोत्रम्'। सुगन्धिपुष्टिमिष्टबुद्धिवृद्धिशौर्य्यधैर्य्यबलकरै रोगनाशकैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणां होमकरणेन वायुवृष्टिजलयोः शुद्ध्या पृथिवीस्थपदार्थानां सर्वेषां शुद्धवायुजलयोगादत्यन्तोत्तमतया सर्वेषां जीवानां परमसुखं भवत्येव। अतस्तत्कर्मकर्तृणां जनानां तदुपकारतयाऽत्यन्तसुखलाभो भवतीश्वरप्रसन्नता चेत्येतदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम्।

भाषार्थ—(सूर्य्यो ज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्यादिप्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है, उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं॥ १॥

(सूर्यो व०) जो सूर्य परमेश्वर हमको सब विद्याओं का देनेवाला, और हम लोगों से उनका प्रचार कराने वाला है, उसी के अनुग्रह के लिये हम लोग अग्निहोत्र करते हैं॥ २॥

(ज्योतिः सूर्य्यः०) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करने वाला, सूर्य्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है, उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं॥ ३॥

(सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्यापक, वायु और

दिन के साथ परिपूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला, और सबके अङ्ग अङ्ग में व्याप्त है। वह अग्नि परमेश्वर हमको विदित हो। उसके अर्थ हम होम करते हैं॥ ४॥

इन चार आहुतियों को प्रातःकाल अग्निहोत्र में करना चाहिये।

(अग्निर्ज्यो०) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप है, उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं। और उसका रचा हुआ जो यह भौतिकाग्नि है, जिसमें द्रव्य डालते हैं सो इसलिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु वृष्टि के साथ मिलाके उनको शुद्ध करदे। जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो॥ १॥

(अग्निर्वर्च्चो०) अग्नि जो परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याओं का देने वाला, तथा भौतिक अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने का हेतु है। इसलिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं। यह दूसरी आहुति हुई॥ २॥

तीसरी आहुति प्रथम मन्त्र से मौन करके करनी चाहिये॥ ३॥

और चौथी (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर प्राणादि वायु में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करने वाला और सब के अङ्ग अङ्ग में व्याप्त है, वह अग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो। जिसके लिये हम होम करते हैं॥ ४॥

अब जिन मन्त्रों से दोनों समय में होम किया जाता है, उनको लिखते हैं—(ओं भू०) इन मन्त्रों में जो जो नाम हैं, वे सब ईश्वर के ही जानो। उनके अर्थ गायत्री मन्त्र के अर्थ में देखने योग्य हैं॥ १-४॥

और (आपो०) 'आपः' जो प्राण परमेश्वर के प्रकाश को प्राप्त होके रस अर्थात् नित्यानन्द मोक्षस्वरूप है, उस ब्रह्म को प्राप्त होकर तीनों लोकों में हम लोग आनन्द से विचरें॥ ५॥

[(सर्वं वै०) हे जगदीश्वर! हम परोपकार के लिये जिस कर्म को करते हैं, वह कर्म आपकी कृपा से परोपकार के लिये समर्थ हो। इसलिये यह कर्म आप के समर्पण है॥ ६॥][१]

इस प्रकार प्रातः और सायंकाल सन्ध्योपासना के पीछे इन पूर्वोक्त मन्त्रों से होम करके अधिक होम करने की जहाँ तक इच्छा हो वहाँ तक 'स्वाहा' अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करें॥

अग्नि वा परमेश्वर के लिये, जल और पवन की शुद्धि, वा ईश्वर की आज्ञापालन के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात् दान करते हैं, उसे '**अग्निहोत्र**' कहते हैं। केशर, कस्तूरी आदि सुगन्ध; घृत, दुग्ध आदि पुष्ट; गुड़, शर्करा आदि मिष्ट तथा सोमलतादि ओषधि **रोगनाशक**, जो ये चार प्रकार के बुद्धिवृद्धि, शूरता, धीरता, बल और आरोग्य करने वाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं, उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र कर्म्म करने वाले मनुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से अन्यन्त सुख का लाभ होता है तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है। ऐसे-ऐसे प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है।

इत्यग्निहोत्रविधिः समाप्तः॥

१. यह कोष्ठान्तर्गत पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है। संस्कृतानुसार पूरा किया है॥ सम्पादक

अथ तृतीयः पितृयज्ञः

तस्य द्वौ भेदौ स्तः—एकस्तर्पणाख्यो द्वितीयः श्राद्धाख्यश्च। तत्र येन येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितॄंश्च तर्पयन्ति सुखयन्ति तत् 'तर्पणम्' तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम्। तदेतत् कर्म विद्वत्सु विद्यमानेष्वेव घटते, नैव मृतकेषु। कुतः, तेषां सन्निकर्षाभावेन सेवनाशक्यत्वात्। मृतकोद्देशेन यत्क्रियते, नैव तेभ्यस्तत् प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेश्च। तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्कर्मोपदिश्यते। सेव्यसेवकसन्निकर्षात् सर्वमेतत्कर्तुं शक्यत इति।

तत्र सत्कर्त्तव्यास्त्रयः सन्ति—देवाः, ऋषयः, पितरश्च। तत्र देवेषु प्रमाणम्—

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ २॥

यजु० अ० १९। मं० ३९॥

द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः, इदमहमनृतात् सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति। स वै सत्यमेव वदेत्। एतद्धि वै देवा व्रतं चरन्ति यत् सत्यं, तस्मात् ते यशो यशो ह भवति य एवं विद्वान्त्सत्यं वदति॥ २॥

शत० कां० १। अ० १। ब्रा० १। कं० ४, ५॥

विद्वाᳬंसो हि देवाः॥ ३॥ शत० कां० ३। अ० ७। ब्रा० ६। कं० १०॥

भाष्यम्—हे (जातवेदः) परमेश्वर! (मा) मां (पुनीहि) सर्वथा पवित्रं कुरु। भवन्निष्ठा भवदाज्ञापलिनो (देवजनाः) विद्वांसः श्रेष्ठा ज्ञानिनो विद्यादानेन (मा) मां (पुनन्तु) पवित्रं कुर्वन्तु। तथा (पुनन्तु मनसा धियः) भवद्दत्तविज्ञानेन भवद्विषयध्यानेन वा नो बुद्धयः पुनन्तु पवित्रा भवन्तु। (पुनन्तु विश्वा भूतानि) विश्वानि सर्वाणि संसारस्थानि भूतानि पुनन्तु भवत्कृपया पवित्राणि सुखानन्दयुक्तानि भवन्तु॥ १॥

(द्वयां वा०) मनुष्याणां द्वाभ्यां लक्षणाभ्यां द्वे एव संज्ञे भवतः—देवाः, मनुष्याश्चेति। तत्र सत्यं चैवानृतं च कारणे स्तः। (सत्यमेव०) यत् सत्यवचनं सत्यमानं सत्यं कर्मैतद्देवानां लक्षणं भवति। तथैतदनृतं वचनमनृतं मानमनृतं कर्म चेति मनुष्याणाम्। योऽनृतात् पृथग्भूत्वा सत्यमुपेयात्, स

देवजातौ परिगण्यते। यश्च सत्यात् पृथग्भूत्वाऽनृतमुपेयात्, स मनुष्यसंज्ञां लभेत। तस्मात्सत्यमेव सर्वदा वदेन्मन्येत कुर्याच्च। यत् सत्यं व्रतमस्ति, तदेव देवा आचरन्ति। स यशस्विनां मध्ये यशस्वीति देवो भवति, तद्विपरीतो मनुष्यश्च॥ २॥

तस्मादत्र विद्वांस एव देवास्सन्तीति॥ ३॥

भाषार्थ—अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं। उसके दो भेद हैं—एक तर्पण, दूसरा श्राद्ध। 'तर्पण' उसे कहते हैं, जिस कर्म से विद्वान्‌रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं। उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है, सो 'श्राद्ध' कहाता है। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हीं में घटता है, मृतकों में नहीं। क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती। किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता, इसलिये मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वथा असम्भव है। इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवा करनेवाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है।

तर्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं—देव, ऋषि और पितर। उनमें से देवों में प्रमाण—

(पुनन्तु०) हे जातवेद परमेश्वर! आप सब प्रकार से मुझको पवित्र करें। जिनका चित्त आप में है, तथा जो आपकी आज्ञा पालते हैं, वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुझ को पवित्र करें। उसी प्रकार आपका दिया जो विशेष ज्ञान वा आपके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हो। (पुनन्तु विश्वा भूतानि) और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्दयुक्त हों॥ १॥

(द्वयं वा०) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् देव और मनुष्य। वहाँ सत्य और झूठ दो कारण हैं। (सत्यमेव०) जो सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य कर्म करने वाले हैं वे '**देव**', और वैसे ही झूठ बोलने, झूठ मानने और झूठ कर्म करने वाले '**मनुष्य**' कहाते हैं। जो झूठ से अलग होके सत्य को प्राप्त होवें, वे देवजाति में गिने जाते हैं। और जो सत्य से अलग होके झूठ को प्राप्त हों, वे **मनुष्य, असुर** और **राक्षस** कहे हैं। इससे सब काल में सत्य ही कहे, माने और करे। सत्यव्रत

का आचरण करने वाला मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से **देव** और उससे उलटे कर्म करने वाला **असुर** होता है॥ २॥

[(विद्वांo)] इस कारण से यहाँ विद्वान् ही देव हैं॥ ३॥

अथर्षिषु प्रमाणम्—

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न् पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः।
तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त सा॒ध्या ऋष॑यश्च॒ ये॥ १॥

य० अ० ३१। मं० ९॥

अथ यदेवानुब्रुवीत। तेनर्षिभ्य ऋणं जायते, तद्ध्येभ्य एतत् करोत्यृषीणां निधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः॥ २॥

शत० कां० १। अ० ७। कं० ३॥

अथार्षेयं प्रवृणीते। ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति, तस्मादार्षेयं प्रवृणीते॥ ३॥

शत० कां० १। प्रपा० ३। अ० ४। कं० ३॥

भाष्यम्—(तं यज्ञम्०) इति मन्त्रः सृष्टिविद्याविषये[१] व्याख्यातः॥ १॥

(अथ यदेवा०) अथेत्यनन्तरं यत् सर्वविद्यां पठित्वानुवचनमध्यापनं कर्मास्ति, तदृषिकृत्यमस्ति। तेनाध्ययनाध्यापनकर्मणर्षिभ्यो देयमृणं जायते। यत् तेषामृषीणां सेवनं करोति, तदेतेभ्य एव सुखकारी भवति। यः सर्वविद्याविद् भूत्वाध्यापयति तमनूचानमृषिमाहुः॥ २॥

(अथार्षेयं प्रवृणीते०) यो मनुष्यः पठित्वा पाठनाख्यं कर्म प्रवृणीते, तदार्षेयं कर्मास्ति। य एवं कुर्वन् तेभ्य ऋषिभ्यो देवेभ्यश्चैतत् प्रियकरं वस्तु सेवनं च निवेदयति, सोऽयं विद्वान् महावीर्यो भूत्वा यज्ञं विज्ञानाख्यं (प्रापत्) प्राप्नोति। ते चैनं विद्यार्थिनं विद्वांसं कुर्युः यश्च विद्वानस्ति यश्चापि विद्यां गृह्णाति, स ऋषिसंज्ञां लभते। तस्मादिदमार्षेयं कर्म सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकार्यम्॥ ३॥

भाषार्थ—(तं यज्ञं०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका[२] के सृष्टिविद्या विषय में कह दिया है॥ १॥

(अथ यदेवा०) अब इसके अनन्तर सब विद्याओं को पढ़ के जो पढ़ाना है, वह 'ऋषिकर्म' कहाता है। उस पढ़ने और पढ़ाने से ऋषियों का ऋण अर्थात् उनको उत्तम उत्तम पदार्थ देने से निवृत्त होता है। और

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाः सृष्टिविद्याविषये-इतिभावः।
२. यहां भूमिका शब्द से 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' अभिप्रेत है॥ सम्पादक

जो इन ऋषियों की सेवा करता है, वह उनको सुख करने वाला होता है। यही व्यवहार अर्थात् विद्या कोश की रक्षा करने वाला होता है। जो सब विद्याओं को जान के सबको पढ़ाता है, उसको '**ऋषि**' कहते हैं॥ २॥

(अथार्षेयं प्रवृणीते०) जो पढ़ के पढ़ाने के लिये विद्यार्थी का स्वीकार करना है, सो **आर्षेय** अर्थात् ऋषियों का कर्म कहाता है। जो उस कर्म को करता हुआ उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करने वाले पदार्थों का निवेदन तथा सेवा करता है, वह विद्वान् अतिपराक्रमी हो के विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करने वाला है उसका '**ऋषि**' नाम होता है। इस कारण से इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें॥ ३॥

अथ पितृषु प्रमाणम्—

ऊर्जं॒ वह॑न्तीर॒मृतं॑ घृ॒तं पयः॑ की॒लालं॑ परि॒स्रुत॑म्।
स्व॒धा स्थ॑ त॒र्पय॑त मे पि॒तॄन्॥ १॥ य० अ० २। मं० ३४॥

भाष्यम्—ईश्वरः सर्वान् प्रत्याज्ञां ददाति—सर्वे मनुष्या एवं जानीयुर्वदेयुश्चाज्ञापयेयुरिति—(मे पितॄन्) मम पितृपितामहादीन् आचार्यादींश्च यूयं सर्वे मनुष्याः (तर्पयत) सेवया प्रसन्नान् कुरुत। तथा (स्वधा स्थ) सत्यविद्याभक्तिस्वपदार्थधारिणो भवत। केन केन पदार्थेन ते सेवनीया इत्याह—(ऊर्जं वहन्तीः) पराक्रमं प्रापिकाः सुगन्धिता हृद्या अपस्तेभ्यो नित्यं दद्युः। (अमृतम्) अमृतात्मकानेकविधरसं (घृतम्) आज्यं (पयः) दुग्धं (कीलालम्) अनेकविधसंस्कारैः सम्पादितमन्नं माक्षिकं मधु च (परिस्रुतम्) कालपक्वं फलादिकं च दत्वा पितॄन् प्रसन्नान् कुर्युः॥ १॥

भाषार्थ—(ऊर्जं वहन्ती०) [ईश्वर सब को आज्ञा देता है कि] पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री वा नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा देके कहे कि—(तर्पयत मे पितॄन्) जो मेरे पिता पितामहादि, माता मातामहादि तथा आचार्य और इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था अथवा ज्ञान से वृद्ध, मान्य करने योग्य हों, उन सब के आत्माओं को यथायोग्य सेवा से प्रसन्न किया करो। सेवा करने के पदार्थ ये हैं—(ऊर्जं वहन्ती०) जो उत्तम उत्तम जल, (अमृतम्) अनेकविधरस, (घृतम्) घी, (पयः) दूध, (कीलालम्) अनेक संस्कारों से सिद्ध किये रोगनाश करने वाले उत्तम उत्तम अन्न [और मधु], (परिस्रुतम्) सब प्रकार के उत्तम उत्तम फल हैं, इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो। जिससे उनका

आत्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे कि उससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो। (स्वधा स्थ०) हे पूर्वोक्त पितृलोगो! तुम सब हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो। और जिस जिस पदार्थ की तुम को अपने लिये इच्छा हो, जो हम लोग कर सकें, उस उस की आज्ञा सदा करते रहो। हम लोग मन, वचन, कर्म से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं। तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ। जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्य्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है, वैसे हम को भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये, जिससे हमको कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो॥ १॥

अथ पितॄणां परिगणनम्—

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च, ते क्रमशो लिख्यन्ते—

१-सोमसदः। २-अग्निष्वात्ताः। ३-बर्हिषदः। ४-सोमपाः। ५-हविर्भुजः। ६-आज्यपाः। ७-सुकालिनः। ८-यमराजाश्चेति॥

भाष्यम्—(सो०) सोमे ईश्वरे सोमयागे वा सीदन्ति, ये सोमगुणाश्च ते 'सोमसदः' (अ०) अग्निरीश्वरः सुष्ठुतया आत्तो गृहीतो यैस्ते 'अग्निष्वात्ताः'। यद्वा अग्नेर्गुणज्ञानात् पृथिवीजलव्योम-यान-यन्त्ररचनादिका पदार्थविद्या सुष्ठुतया आत्ता गृहीता यैस्ते। (ब०) बर्हिषि सर्वोत्कृष्टे ब्रह्मणि शमदमादिषूत्तमेषु गुणेषु वा सीदन्ति ते 'बर्हिषदः'। (सो०) यज्ञेनोत्तम-मौषधिरसं पिबन्तिं पाययन्ति वा ते 'सोमपाः'॥ १-४॥

(ह०) हविर्हुतमेव यज्ञेन शोधितवृष्टिजलादिकं भोक्तुं भोजयितुं वा शीलमेषां ते 'हविर्भुजः'। (आ०) आज्यं घृतम्, यद्वा 'अज गतिक्षेपणयोः' धात्वर्थादाज्यं विज्ञानम् तद्दानेन पान्ति रक्षन्ति पालयन्ति रक्षयन्ति ये विद्वांसस्ते 'आज्यपाः'। (सु०) ईश्वरविद्योपदेशकरणस्य ग्रहणस्य च शोभनः कालो येषां ते। यद्वा ईश्वरज्ञानप्राप्त्या सुखरूपः सदैव कालो येषां ते 'सुकालिनः'। (य०) ये पक्षपातं विहाय न्यायव्यवस्थाकर्त्तारस्सन्ति ते 'यमराजाः'॥ ५-८॥

भाषार्थ—(सो०) जो ईश्वर और सोमयज्ञ में निपुण, और जो शान्त्यादिगुण सहित हैं, वे 'सोमसद्' कहाते हैं। (अ०) अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञात करके जिनने अच्छे प्रकार अग्निविद्या सिद्ध की है, उनको 'अग्निष्वात्ताः' कहते हैं। (ब०) जो सब से उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शम-दम-सत्य-विद्यादि उत्तम गुणों में वर्त्तमान हैं, उनको 'बर्हिषद्' कहते हैं। (सो०) जो यज्ञ करके सोमलतादि उत्तम ओषधियों के रस के पान करने और कराने वाले हैं, तथा जो सोमविद्या को जानते हैं, उनको 'सोमपाः' कहते हैं॥ १-४॥

(ह०) जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते, और जो यज्ञ से अन्नजलादि की शुद्धि करके खाने पीने वाले हैं, उनको 'हविर्भुजः' कहते हैं। (आ०) आज्य कहते हैं घृत, स्निग्धपदार्थ और विज्ञान को, जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं, उनको 'आज्यपाः' कहते हैं। (सु०) मनुष्य-शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय, और जो सदा उपदेश में ही वर्त्तमान हैं उनको 'सुकालिनः' कहते हैं। (य०) जो पक्षपात को छोड़ के सदा सत्य न्याय व्यवस्था ही करने में रहते हैं, उनको 'यमराज' कहते हैं॥ ५-८॥

९-पितृपितामहप्रपितामहाः। १०-मातृपितामहीप्रपितामह्यः। ११-सगोत्राः। १२-[आचार्यादि] सम्बन्धिनः॥

भाष्यम्—(पि०) ये सुष्ठुतया श्रेष्ठान् विदुषो गुणान् वासयन्तस्तत्र वसन्तश्च, विज्ञानाद्यनन्तधनाः स्वान् जनान् धारयन्तः पोषयन्तश्च चतुर्विंशति-वर्षपर्यन्तेन ब्रह्मचर्येण विद्याभ्यासकारिणः स्वे जनकाश्च सन्ति, ते पितरो वसवो विज्ञेया ईश्वरोऽपि। (पिता०) ये पक्षपातरहिता दुष्टान् रोदयन्तश्च-तुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तेन ब्रह्मचर्यसेवनेन कृतविद्याभ्यासास्ते रुद्राः स्वे पितामहाश्च ग्राह्यास्तथा रुद्र ईश्वरोऽपि। (प्रपि०) आदित्यवदुत्तमगुण-प्रकाशका विद्वांसोऽष्टचत्वारिंशद्वर्षेण ब्रह्मचर्येण सर्वविद्यासम्पन्नाः सूर्यवद्विद्याप्रकाशकाः [त आदित्याः] स्वे प्रपितामहाश्च ग्राह्यास्तथाऽऽ-दित्योऽविनाशीश्वरो वात्र गृह्यते। (मा०) पित्रादिसदृश्यो मात्रादयः सेव्याः॥ ९-१०॥

ये (स०) स्वसमीपं प्राप्ताः पुत्रादयस्ते श्रद्धया पालनीयाः (आ० सं०) ये गुर्वादिसख्यन्तास्सन्ति ते हि सर्वदा सेवनीयाः॥ ११-१२॥

भाषार्थ—(पि०) जो वीर्य के निषेकादि कर्मों को करके उत्पत्ति और पालन करे, और चौबीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम से विद्या को पढ़े, उसका नाम '**पिता**' और '**वसु**' है। (पिता०) जो पिता का पिता हो, और चवालीस वर्ष पर्य्यन्त [ब्रह्मचर्य से विद्याभ्यास कर पक्षपात रहित होकर दुष्टों को रुलाने वाला है, उसका नाम '**पितामह**' और '**रुद्र**' है। (प्रपितामहः)

जो पितामह का पिता और आदित्य के समान उत्तम गुणों का प्रकाशक अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त][१] ब्रह्मचर्य्याश्रम से विद्या पढ़ के सब जगत् का उपकार करता हो, उसको 'प्रपितामह' और 'आदित्य' कहते हैं। तथा जो पित्रादिकों के तुल्य पुरुष हैं उनकी भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिये।

(मा०) पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियों की भी अत्यन्त सेवा करनी चाहिये॥ ९-१०॥

(सगो०) जो समीपवर्त्ती ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं, वे भी सेवा करने के योग्य हैं॥

(आचार्य्यादिसं०) जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले, श्वसुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं, उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये॥ ११-१२॥

एतेषां विद्यमानानां सोमसदादीनां सुखार्थं प्रीत्या यत् सेवनं क्रियते तत् तर्पणम्, श्रद्धया यत् सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धम्। ये सत्यविज्ञानदानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः।

अत्र प्रमाणानि—

'ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः'[२] इत्यादीनि यजुर्वेदस्यैकोनविंशतितमेऽध्याये सप्तसु सोमसदादिषु पितृषु द्रष्टव्यानि। तथा ये उ समानाः समनसः पितरो यमराज्य[३] इत्यादीनि यमराजेषु। 'पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः'[४] इत्यादीनि पितृपितामहप्रपितामहादिषु। एवं 'नमो वः पितरो रसाय'[५] इत्यादीनि पितॄणां सत्कारे च। इति ऋग्यजुरादिवचनानि सन्तीति बोध्यम्। अन्यच्च—

वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥

मनु० अ० ३। श्लो० २८४॥

भाषार्थ—जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवते हों, उनको प्रीति से सेवनादि से तृप्त करना '**तर्पण**' और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवन करना है, सो '**श्राद्ध**' कहाता है। जो सत्य विज्ञानदान से जनों को

१. यह पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है। संस्कृतानुसार पूरा किया है। सम्पादक
२. यजुः १९। ५१॥ ऋ० १०। १५। ८॥ ३. यजुः १९। ४५॥
४. यजुः १९। ३६॥ ५. यजुः २। ३२॥ सं०

पालन करते हैं वे 'पितर' हैं। इस विषय में प्रमाण—

'ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः'[१] इत्यादि मन्त्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं। **'ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये'**[२] इत्यादि मन्त्र यमराजों, **'पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः'**[३] इत्यादि मन्त्र पिता की पितामह प्रपितामहादिकों तथा **'नमो वः पितरो रसाय'**[४] इत्यादि मन्त्र पितरों की सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्-यजुर्वेद आदि के वचन हैं।

और मनुजी ने भी कहा है—'पितरों को **वसु,** पितामहों को **रुद्र** और प्रपितामहों को **आदित्य** कहते हैं, यह सनातन श्रुति है।'

मनु० अ० ३। श्लो० २८४॥

इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः॥

१. यजुः १९। ५१॥ ऋ० १०। १५। ८॥ २. यजुः १९। ४५॥
३. यजुः १९। ३६॥ ४. यजुः २। ३२॥ सं०

अथ बलिवैश्वदेवविधिर्लिख्यते

यदन्नं पक्वमक्षारलवणं भोजनार्थं भवेत्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्म कार्य्यम्—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्॥

मनु० अ० ३। श्लो० ४८॥

भाषार्थ—[अब चौथे बलिवैश्वदेव की विधि लिखी जाती है—अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो, तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें से खट्टा, लवणान्न और क्षार को छोड़कर घृतमिष्टयुक्त अन्न जो कुछ पाकशाला में सिद्ध हो, उसको दिव्यगुणों के अर्थ पाकाग्नि में विधिपूर्वक नित्य होम करे।][1]

अथ बलिवैश्वदेवकर्म्मणि प्रमाणम्—

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम॥ १॥

अथर्व० कां० १९। सू० ५५। म० ७१॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ २॥

यजु० अ० १९। मं० ३९॥

भाष्यम्—हे (अग्ने) परमेश्वर! ये (अहरहर्बलि०) भवदाज्ञया बलिवैश्वदेवं नित्यं कुर्वन्तो मनुष्यास्ते (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्त्तिराज्य-लक्ष्म्या घृतदुग्धादिपुष्टिकारकपदार्थप्राप्त्या च सम्यक् शुद्धेच्छया (मदन्तः) नित्यानन्दप्राप्ताः सन्तः, मातुः पितुराचार्य्यादीनां चोत्तमपदार्थैः प्रीतिपूर्विकां सेवां नित्यं कुर्युः। (अश्वायेव तिष्ठते घासम्) यथाऽश्वस्य सन्मुखे तद्भक्ष्यं तृणवीरुधादि वा तत्पानार्थं जलादि पुष्कलं स्थाप्यते, तथा सर्वेषां सेवनाय बहून्युत्तमानि वस्तूनि दद्युर्यतस्ते प्रसन्ना भवेयुः। (मा ते अग्ने प्रतिवेशा

1. यह कोष्ठकान्तर्गत पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है। संस्कृतानुसार पूरा किया है। सम्पादक

रिषाम) हे परमगुरो अग्ने परमेश्वर! भवदाज्ञातो ये विरुद्धव्यवहारास्तेषु वयं कदाचिन्न प्रविशेम। अन्यायेन कदाचित्प्राणिनः पीडां न दद्याम। किन्तु सर्वान् स्वमित्राणीव स्वयं सर्वेषां मित्रमिवेति ज्ञात्वा परस्परमुपकारं कुर्य्यामितीश्वराज्ञास्ति॥ १॥

(पुनन्तु०) अस्यार्थो देवप्रकरणे[1] उक्तः॥ २॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर! आपकी आज्ञा से (अहरहर्बलि०) नित्यप्रति बलिवैश्वदेव कर्म करते हुए लोग (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्मी, घृतदुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से (मदन्तः) नित्य आनन्द में रहें तथा माता, पिता, आचार्य्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा करते रहें (अश्वायेव तिष्ठते घासम्) जैसे घोड़े के सामने बहुत से खाने वा पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं, वैसे सबकी सेवा के लिये बहुत से उत्तम-उत्तम पदार्थ देवें। जिनसे वे प्रसन्न होके हम पर नित्य प्रसन्न रहें। (मा ते अग्ने प्रतिवेषा रिषाम) हे परमगुरु अग्नि परमेश्वर! आप और आपकी आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें, और अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुँचावें, किन्तु सबको अपना मित्र और अपने को सबका मित्र समझ के परस्पर उपकार करते रहें॥ १॥

(पुनन्तु०) इसका अर्थ देवतर्पणविषय में कर दिया है॥ २॥

अथ होममन्त्राः—

ओमग्नये स्वाहा॥ १॥ ओं सोमाय स्वाहा॥ २॥ ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा॥ ३॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥ ४॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा॥ ५॥ ओं कुह्वै स्वाहा॥ ६॥ ओमनुमत्यै स्वाहा॥ ७॥ ओं प्रजापतये स्वाहा॥ ८॥ ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा॥ ९॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा॥ १०॥

भाष्यम्—(ओम०) अग्न्यर्थ उक्तः। (ओं सो०) सर्वानन्दप्रदो यः सर्वजगदुत्पादक ईश्वरः सोऽत्र ग्राह्यः। [(ओमग्नी०) प्राणापानाभ्याम्, अनयोरर्थो गायत्रीमन्त्रार्थ उक्तः[2]।][3] (ओं वि०) विश्वेदेवा विश्वप्रकाशका

1. पितृयज्ञान्तर्गते। 2. महाव्याहृत्यर्थे
3. यह पाठ प्रथम संस्करण में नहीं है। किन्तु इन मन्त्रों का अर्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ऐसा ही किया है॥ सम्पादक

ईश्वरगुणाः, सर्वे विद्वांसो वा। (ओं धन्व०) सर्वरोगनाशक ईश्वरोऽत्र गृह्यते। (ओं कु०) दर्शेष्ट्यर्थोऽयमारम्भः। अमावास्येष्टिप्रतिपादितायै चितिशक्तये वा॥ १-६॥

(ओम०) पौर्णमासेष्ट्यर्थोऽयमारम्भः, विद्यापठनानन्तरं मतिर्मननं ज्ञानं यस्याश्चितिशक्तेः सा चितिरनुमतिर्वा। (ओं प्र०) सर्वजगतः स्वामी रक्षक ईश्वरः। (ओं सह०) ईश्वरेण प्रकृष्टगुणैः सहोत्पादितयोः पुष्टिकरणाय। (ओं स्विष्ट०) यः सुष्ठु शोभनमिष्टं सुखं करोति स चेश्वरः॥ ७-१०॥

एतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाऽथ बलिदानं कुर्य्यात्—

भाषार्थ—(ओम०) अग्नि शब्दार्थ कह आये हैं। (ओं सो०) जो सब पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करने से सुख देनेहारा है, उसको '**सोम**' कहते हैं। (ओमग्नी०) जो प्राण सब प्राणियों के जीवन का हेतु, और अपान अर्थात् दुःख के नाश का हेतु है, इन दोनों को '**अग्नीषोम**' कहते हैं। (ओं वि०) यहाँ संसार को प्रकाश करने वाले ईश्वर के गुण, अथवा विद्वान् लोगों का '**विश्वेदेव**' शब्द से ग्रहण होता है। (ओं वा०) जो जन्ममरणादि रोगों का नाश करनेहारा परमात्मा है वह '**धन्वन्तरि**' कहाता है। (ओं कु०) जो अमावास्येष्टि का करना है॥ १-६॥

(ओम०) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्वशास्त्रप्रतिपादित परमेश्वर की चिति शक्ति है यहाँ उसका ग्रहण है। (ओं प्र०) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है, वह 'प्रजापति' कहाता है। (ओं स०) ईश्वर से उत्पादित अग्नि और पृथिवी की पुष्टि करने के लिये। (ओं स्वि०) जो इष्ट सुख करनेहारा परमेश्वर है, वही 'स्विष्टकृत्' कहाता है। ये दश अर्थ दश मन्त्रों के हैं॥ ७-१०॥

अब बलिदान के मन्त्रों को लिखते हैं—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः॥ ओं सानुगाय यमाय नमः॥ ओं सानुगाय वरुणाय नमः॥ ओं सानुगाय सोमाय नमः॥ ओं मरुद्भ्यो नमः॥ ओम् अद्भ्यो नमः॥ ओं वनस्पतिभ्यो नमः॥ ओं श्रियै नमः॥ ओं भद्रकाल्यै नमः॥ ओं ब्रह्मपतये नमः॥ ओं वास्तुपतये नमः॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः॥ ओं नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः॥ ओं सर्वात्मभूतये नमः॥ ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥ १-१६॥

भाष्यम्—(ओं सा०) 'णम प्रह्वत्वे शब्दे च' इत्यनेन सत्क्रियापुरस्सर-विचारेण मनुष्याणां यथार्थं विज्ञानं भवतीति वेद्यम्। नित्यैर्गुणैस्सह वर्त्तमानः परमैश्वर्यवानीश्वरोऽत्रेन्द्रशब्देन गृह्यते। (ओं० सानु०) पक्षपातरहितो न्यायकारित्वादिगुणयुक्तः परमात्मात्र यमशब्दार्थेन वेद्यः। (ओं सा०) विद्याद्युत्तमगुणविशिष्टः सर्वोत्तमः परमेश्वरोऽत्र वरुणशब्देन ग्रहीतव्यः। (ओं सानुगाय सो०) अस्यार्थ उक्तः॥

(ओं म०) य ईश्वराधारेण सकलं विश्वं धारयन्ति चेष्टयन्ति ते अत्र मरुतो गृह्यन्ते। (ओं अद्भ्य०) अस्यार्थः 'शन्नोदेवी'रित्यत्रोक्तः। (ओं व०) वनानां लोकानां पतय ईश्वरगुणाः परमेश्वरो वा। बहुवचनमत्रादरार्थम्। यद्वोत्तमगुणयोगेनेश्वरेणोत्पादितेभ्यो महावृक्षेभ्यश्चेति बोध्यम्। (ओं श्रि०) श्रीयते सेव्यते सर्वैर्जनैस्सः श्रीरीश्वरस्सर्वसुखशोभावत्वाद् गृह्यते। यद्वा तेनोत्पादिता विश्वशोभा च। (ओं० भ०) भद्रं कल्याणं सुखं कालयितुं शीलमस्याः सा भद्रकालीश्वरशक्तिः।

(ओं ब्र०) ब्रह्मणः सर्वशास्त्रविद्यायुक्तस्य वेदस्य ब्रह्माण्डस्य वा पतिरीश्वरः। (ओं० वा०) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिंस्तद्वास्त्वाकाशं तत्पतिरीश्वरः। (ओं वि०) अस्यार्थ उक्तः। (ओं दि०) (ओं नक्तं०) ईश्वरकृपयैवं भवेद् दिवसे यानि भूतानि विचरन्ति रात्रौ च, तान्यस्मासु विघ्नं मा कुर्वन्तु। तैः सहास्माकमविरोधोऽस्तु। एतदर्थोऽयमारम्भः। (ओं स०) सर्वेषां जीवात्मनां भूतिर्भवनं सत्तेश्वरो नान्यः। (ओं पि०) अस्यार्थः पितृतर्पणे प्रोक्तः। नम इत्यस्य निरभिमानद्योतनार्थः। परस्योत्कृष्टतया मान्यज्ञापनार्थश्चारम्भः॥ १-१६॥

भाषार्थ—(ओं सा०) जो सर्वैश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर और जो उसके गुण हैं, वे '**सानुग इन्द्र**' शब्द से ग्रहण होते हैं, (ओं सा०) जो सत्य न्याय करने वाला ईश्वर और सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद् हैं, वे '**सानुग यम**' शब्दार्थ से ग्रहण होते हैं। (ओं सा०) जो सबसे उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त हैं, वे '**सानुग वरुण**' शब्दार्थ से जानने चाहियें। (ओं सा०) पुण्यात्माओं को आनन्दित करने वाला और जो पुण्यात्मा लोग हैं, वे '**सानुग सोम**' शब्द से ग्रहण किये हैं।

(ओं मरु०) जो प्राण अर्थात् जिनके रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है, उनको '**मरुत्**' कहते हैं। इनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। (ओं अद्भ्यो०) इसका अर्थ '**शन्नोदेवी**' इस मन्त्र के अर्थ में लिखा है। (ओं व०) जिनसे वर्षा अधिक होती और जिनके फलादि से

जगत् का उपकार होता है, उनकी भी रक्षा करनी योग्य है। (ओं श्रि०) जो सब के सेवा करने योग्य परमात्मा है, उसकी सेवा से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये। (ओं भ०) जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है, उसका सदा आश्रय करना चाहिये। १-९॥

(ओं ब्र०) जो वेद का स्वामी ईश्वर है, उसकी प्रार्थना और उद्योग विद्या-प्रचार के लिये अवश्य करना चाहिये। (ओं वा०) जो वास्तुपति गृहसम्बन्धी पदार्थों का पालन करनेहारा मनुष्य अथवा ईश्वर है, इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये। (ओं वि०) इसका अर्थ कह दिया है। (ओं दि०) जो दिन में विचरने वाले प्राणियों से उपकार लेना और उनको सुख देना है, सो मनुष्यजाति का ही काम है। (ओं नक्तं०) जो रात्रि में विचरने वाले प्राणी हैं, उनसे भी उपकार लेना और जो उनको सुख देना है, इसलिये यह प्रयोग है। (ओं सर्वात्म०) सब में व्याप्त परमेश्वर की सत्ता को सदा ध्यान में रखना चाहिये। (ओं पि०) माता, पिता, आचार्य, अतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिये। '**स्वाहा**' शब्द का अर्थ पूर्व कर दिया है। और '**नमः**' शब्द का अर्थ यह है कि आप अभिमान रहित होके दूसरे का मान्य करना॥ १०-१६॥

इसके पीछे छः भागों को लिखते हैं—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥[1]

अनेन षड् भागान् भूमौ दद्यात्। एवं सर्वप्राणिभ्यो भागान् विभज्य दत्त्वा च तेषां प्रसन्नतां सम्पादयेत्।

भाषार्थ—कुत्तों, कङ्गालों, कुष्ठी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिए छः भाग अलग-अलग बाँट के दे देना और उनकी प्रसन्नता सदा करना।

यह वेद और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी॥

इति बलिवैश्वदेवविधिः समाप्तः।

१. मनु० ३। ९२॥ सं०

अथ पञ्चमोऽतिथियज्ञः प्रोच्यते

यत्रातिथीनां सेवनं यथावत् क्रियते, तत्रैव कल्याणं भवति। ये पूर्णविद्यावन्तः परोपकारिणो जितेन्द्रिया धार्मिकाः सत्यवादिनश्छलादिदोषरहिता नित्यभ्रमणकारिणो मनुष्यास्सन्ति तानतिथीन् कथयन्ति। अत्रानेके प्रमाणभूता वैदिकमन्त्रास्सन्ति, परन्त्वत्र संक्षेपतो द्वावेव लिखामः—

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ १॥

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथाऽस्त्विति॥ २॥

अथर्व० कां० १५। सू० ११। मं० १-२॥

भाष्यम्—(तद्य०) यस्य गृहे पूर्वोक्तविशेषयुक्तो विद्वान् (व्रात्यो०) महोत्तमगुणविशिष्टः सेवनीयोऽतिथिरर्थाद्यस्य गमनागमनयोरनियततिथिः न यस्य काचिन्नियता तिथिर्भवति, किन्तु स्वेच्छयाऽकस्मादागच्छेद् गच्छेच्च, स यदा गृहस्थानां गृहेषु प्राप्नुयात्॥ १॥

(स्वयमेनम०) तदा गृहस्थोऽत्यन्तप्रेम्णोत्थाय नमस्कृत्य च तं महोत्तमासने निषादयेत्। तदनन्तरं पृच्छेद् भवतां जलादेरन्यस्य वा वस्तुन इच्छास्ति चेत्तद् ब्रूहि। सेवां कृत्वा तत्प्रसन्नतां सम्पाद्य स्वस्थचित्तस्सन्नेवं पृच्छेत्—(व्रात्य क्वावात्सीः) हे व्रात्य पुरुषोत्तम! त्वमितः पूर्वं क्व अवात्सीः कुत्र निवासं कृतवान्। (व्रात्योदकम्) हे अतिथे! जलमेतद् गृहाण। (व्रात्य तर्पयन्तु) भवान् स्वकीयसत्योपदेशेनास्मांश्च तर्पयतु, प्रीणयतु, तथा भवत्सत्योपदेशेन तत्सर्वाणि मम मित्राणि भवन्तं तर्पयित्वा विज्ञानवन्तो भवन्तु। (व्रात्य यथा०) हे विद्वन्! यथा भवतः प्रसन्नता स्यात्तथा वयं कुर्याम। यद्वस्तु भवत्प्रियमस्ति तस्याज्ञां कुरु। (व्रात्य यथा ते०) हे अतिथे! यथेच्छतु भवान् तदनुकूलानस्मान् भवत्सेवाकरणे निश्चिनोतु। (व्रात्य यथा ते०) यथा भवदिच्छापूर्तिस्स्यात् तथा भवत्सेवां वयं कुर्याम। यतो भवान् वयं च परस्परं सेवासत्सङ्गपूर्विकया विद्यावृद्ध्या सदानन्दे तिष्ठेम।

भाषार्थ—अब जो पाँचवाँ अतिथियज्ञ कहाता है, उसको लिखते हैं—जिसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है। जो पूर्ण विद्वान्,

परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छल-कपट-रहित, नित्य भ्रमण करने वाले मनुष्य होते हैं, उनको 'अतिथि' कहते हैं। इसमें अनेक वैदिक मन्त्र प्रमाण हैं। परन्तु यहाँ संक्षेप के लिये दो ही मन्त्र लिखते हैं—

(तद्यस्यैवं विद्वान्) जिनके घर में पूर्वोक्त गुणयुक्त विद्वान् (व्रात्यो०) उत्तम गुणविशिष्टसेवा करने के योग्य अतिथि, अर्थात् जिसकी आने जाने की कोई भी निश्चित तिथि नहीं हो, जो अकस्मात् आवे और जावे, जब ऐसा मनुष्य गृहस्थों के घर में प्राप्त हो॥ १॥

(स्वयमेनम०) तब उसको गृहस्थ अत्यन्त प्रेम से उठकर नमस्कार करके, उत्तम आसन पर बैठाके, पश्चात् पूछे कि आपको कुछ जल वा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो कहिये। इस प्रकार उसको प्रसन्न कर और स्वयं स्वस्थचित्त होके उससे पूछे कि—(व्रात्य क्वावात्सीः) हे व्रात्य उत्तम पुरुष! आपने यहाँ आने के पूर्व कहाँ वास किया था? (व्रात्योदकम्) हे अतिथि! यह जल लीजिये। (व्रात्य तर्पयन्तु) और हम लोग अपने सत्य प्रेम से आपको तृप्त करते हैं, और सब हमारे इष्ट मित्र लोग आपके उपदेश से विज्ञानयुक्त होके सदा प्रसन्न हों। (व्रात्य यथा०) हे विद्वान् व्रात्य! जिस प्रकार से आपकी प्रसन्नता हो वैसा ही हम लोग काम करें, और जो पदार्थ आपको प्रिय हो उसकी आज्ञा कीजिये। (व्रात्य यथा०) जिस प्रकार से आपकी कामना पूर्ण हो वैसी आपकी सेवा हम लोग करें। जिससे आप और हम लोग परस्पर सेवा और सत्संगपूर्वक विद्यावृद्धि से सदा आनन्द में रहें॥ २॥

इति संक्षेपतोऽतिथियज्ञः॥

श्रीयुतविक्रमादित्यमहाराजस्य चतुस्त्रिंशोत्तरे
एकोनविंशे संवत्सरे भाद्रपौर्णिमायां समापितः
इति पञ्चमहायज्ञविधिः समाप्तः॥